National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2025; 1(60): 62-63
© 2025 NJHSR
www.sanskritarticle.com

डॉ. रेखा मेनारिया
विभागाध्यक्ष एवं सहायक आचार्य,
संगीत विभाग, भूपाल नोबल्स-
विश्वविद्यालय, उदयपुर, राज.

Correspondence:
डॉ. रेखा मेनारिया
विभागाध्यक्ष एवं सहायक आचार्य,
संगीत विभाग, भूपाल नोबल्स-
विश्वविद्यालय, उदयपुर, राज.

ध्रुपद गायन : इतिहास और परंपरा

डॉ. रेखा मेनारिया

संगीत के बिना मानव जीवन अधूरा है। जीवन को रसयुक्त बनाने में संगीत का महत्व सर्वविदित है। भारत की संगीत परंपरा विश्व में अद्वितीय है। भारत में संगीत के दो रूप मिलते हैं। एक गायन के रूप में व दूसरा वादन के रूप में। यहाँ गायन व वादन के अनेक रूप सहज में ही मिल जाते हैं। संगीत में यह विविधता भारत की विशिष्टता है। गायन की अनेक परंपराओं में ध्रुपद गायन एक विशिष्ट गायन शैली है।

वर्तमान युग वस्तुतः ख्याल गायन का युग है, किन्तु आज से लगभग 200 वर्ष पूर्व भारत में एक विशेष गायन शैली प्रचलित थी, जिसे 'ध्रुपद' के नाम से जाना जाता था। 'ध्रुपद' शैली गायन की एक विशेष शैली है। संगीत गायन के क्षेत्र में इसका विशिष्ट महत्व है। ध्रुपद गायन शैली का आविष्कार किसने किया यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। ध्रुपद गायन शैली की उत्पत्ति और विकास के संबंध में अनेक मत मतांतर प्रचलित हैं। कुछ विद्वान आलोचक ध्रुपद का रचयिता शारंगदेव को मानते हैं तो कुछ का मानना है कि ग्वालियर के राजा मानसिंह इस शैली के रचयिता हैं। किन्तु शोध से यह सर्वविदित है कि ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर ने ध्रुपद शैली को स्वरूप प्रदान किया था और यह शैली उस युग की प्रधान गायन शैली के रूप में प्रचलित थी। यह भी उल्लेखनीय तथ्य है कि बादशाह अकबर के दरबारी गायक मुख्य रूप से ध्रुपद ही गाते थे। मियां तानसेन ने तो इसकी महानता में वृद्धि की ही थी।

ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करें तो ज्ञात होता है कि ध्रुपद शैली 15वीं शताब्दी में जिस तरह महत्व प्राप्त कर चुकी थी उससे स्पष्ट होता है कि इसका जन्म कई वर्षों पूर्व हो चुका होगा।

संगीत के गायन के क्षेत्र में ध्रुपद गायकी को अत्यन्त सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। ध्रुपद गायकों को सामान्यतः कलावंत के रूप में पहचाना जाता था।

'ध्रुवपद' शब्द का अपभ्रंश रूप ध्रुपद है। ध्रुपद को मर्दाना गायन कहा जाता है, क्योंकि इसके गायन में गले व फेफड़ों पर पर्याप्त जोर पड़ता है। इस गायन के चार भाग होते हैं-

स्थायी
अंतरा
संचारी
आभोग

ध्रुपद के संग वाद्य के रूप में पखावज का प्रयोग किया जाता है। पखावज की संगत पर चौताल, सूलफाक, झम्पा, तीव्रा, ब्रह्म और रुद्र जैसी तालें बजाई जाती हैं। ध्रुपद गायन और पखावज की संगत श्रोताओं को भावविभोर कर देती है। इसका प्रभाव श्रोताओं के हृदय पर अत्यंत प्रभावकारी होता है।

ध्रुपद गायन शैली में आलापचारी के साथ गमक का प्रयोग दुगुन, चौगुन, अठगुन और आड के साथ गान गाया जाता है। विद्वानों के मतानुसार इस शैली में वीर, शृंगार तथा शांत रस का संचार होता है।

प्राचीनकाल में ध्रुपद गायन भिन्न-भिन्न प्रकार से होता था। जिसे बानी के नाम से जाना जाता था। खंडार, नौहार, डागुर और गौबरहार ये चार शैलियां ध्रुपद गायन में मुख्य मानी जाती थीं।

साधारणी, आदि गाने की भिन्न-भिन्न रीतियां प्रसिद्ध थीं, जिन्हें गीति कहते थे। उन्हीं से बानियों की उत्पत्ति मानी गई है। ध्रुपद में गमक गायन अत्यंत कठिन गायन है। यह गायन शैली जनसाधारण की समझ से परे है। इसलिए इसका प्रचलन समय के साथ कम होता गया है।

ध्रुपद गायन के क्षेत्र में वर्तमान में अनेक लब्धप्रतिष्ठ गायक इस विधा में महारत प्राप्त है और उन्हीं के प्रयासों से वे इस गायन शैली को जीवित बनाए हुए हैं। इन गायकों में अनेक नाम ख्यात हैं, जिनमें डागर बंधु, गुंदेचा बंधु प्रमुख हैं। डागर बंधुओं ने इस गायन शैली को विश्व स्तर पर पहचान दिलाई है। गुंदेचा बंधुओं द्वारा ध्रुपद का संरक्षण किया जा रहा है। इस दिशा में उनके द्वारा कई प्रयास किये जा रहे हैं। नई पीढ़ी को ध्रुपद गायन के क्षेत्र में आगे आने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है। इसके लिए उन्होंने ध्रुपद संस्थान की स्थापना भी की है। यह संस्थान स्वयं गुंदेचा बंधुओं और उनके परिवार के सदस्यों के द्वारा संचालित किया जा रहा है। इस संस्थान में संगीत शिक्षार्थियों को विधिवत् ध्रुपद गायन का शिक्षण-प्रशिक्षण दिया जा रहा है।

अकबर के दरबार में संगीत और संगीतज्ञों का अत्यंत आदर-सत्कार और सम्मान था। अकबर के दरबार में संगीत के चार रत्न थे। जिनमें तानसेन, ब्रह्मचन्द, राजा समोखन सिंह, श्री चन्द राजपूत थे। ध्रुपद की चारों बानियों के प्रवर्तक ये चारों ही संगीतज्ञ थे। अन्य संगीतज्ञों में हरिदास स्वामी, गोपाल नायक, बेजू बावरा तथा चिन्तामणि मिश्र, आदि के नाम भी उल्लेखनीय थे। ये कलाकार केवल गायक ही नहीं थे, अपितु सकल वाग्गेयकार भी थे।

स्वयं तानसेन तथा बेजू बावरा ने अनेक ध्रुपद रचे जो आज भी गायकों के लिए वरदान स्वरूप हैं। जिन्हें आज भी गायकों द्वारा गाया जाता है।

भारतीय संगीत की विभिन्न गायन शैलियों में ध्रुरपद शैली का अपना स्वतंत्र अस्तित्व एवं पहचान है। अपने समय में यह लगभग 350 वर्ष तक इसका सम्मान और आदर था। इस गायन की कठिनता के कारण आज इस शैली का वैसा प्रभाव और प्रयोग दृष्टिगत नहीं होता है।

यह सच है कि तानसेन ने अपने गायन के प्रभाव से पशु-पक्षियों को निकट बुला लिया। सूखी डालियों पर फूल खिला लिये। उन्होंने दीपक राग गाकर राजमहल के बुझे हुए दीपक प्रज्वलित कर दिये। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि उस समय ध्रुपद शैली में अद्‌भुत ओज, माधुर्य एवं प्रभविष्णुता रही होगी। संभवतः कालान्तर में साधना के अभाव से तथा देशकाल व परिस्थिति के अनुकूल इसके स्वरूप में परिवर्तन न होने से इस शैली का रूप कुछ विकृत हो गया जिसके कारण ख्याल पद्धति को आगे बढ़ाने में प्रोत्साहन मिला। स्पष्ट है कि आज के ध्रुपद गायकों को सुनने पर यह विश्वास नहीं होता कि इसी ध्रुपद गायन से सूखे वृक्ष कभी हरे हुए होंगे और पत्थर भी पिघलकर पानी बन गए होंगे।

घरानेदार गायकों के पास जो भी धुरपद की गायकी अवशेष है। वह हमारी सांस्कृतिक सम्पत्ति है। इस सम्पत्ति को समयानुसार उपयोगी बनाया जाना चाहिए।

पण्डित भातखण्डे जी ने अनेक खानदानी ध्रुपद अपनी पुस्तकों में स्वरलिपिबद्ध किये हैं। यह संकलन उनका अभिनन्दनीय प्रयास है। इस बात को स्वयं भातखण्डे जी ने स्वीकार की कि युवक कलाकार घरानेदार गायकों के पास शिक्षा लें। सरकार पर्याप्त मात्रा में इस शैली को सीखने हेतु छात्रवृत्ति प्रदान करे एवं विश्वविद्यालय आदि शिक्षण संस्थान पाठ्यक्रम में संशोधन कर ध्रुपद को वापस अपना अस्तित्व प्रदान करने के लिए प्रयास करे।

संगीत गायन की क्षेत्र में वर्तमान में इसके प्रति उदासीन व्यवहार गायन की इस समृद्ध परंपरा के लिए खतरा बना हुआ है। इस शैली को विलुप्त होन से बचाने के लिए सार्थक प्रयास किये जाने की आवश्यकता है। संगीत विभागों में इस गायन शैली के महत्व को पुनःस्थापित करना होगा। इस गायन शैली के प्रति नयी पीढ़ी को आकर्षित करना होगा। यदि सार्थक प्रयास नहीं किये गये तो यह शैली विरासत बनकर रह जाएगी। इसे पुनः जीवंत करने के लिए व इसके महत्व को स्थापित करने के लिए समग्र और सामूहिक प्रयास की आवश्यकता है।